"रस के भेद"

किसी काव्य कृति को पढ़कर या सुनकर हमें जिस आनन्द की अनुभूति होती है, उसे रस कहते हैं। 'नाट्यशास्त्र' के रचयिता आचार्य भरतमुनि ने रसों की संख्या आठ मानी है — शृंगार रस, वीर रस, रौद्र रस, वीभत्स रस, अद्भुत रस, हास्य रस, भयानक रस और करुण रस। आचार्य मम्मट ने 'निर्वेद' को स्थायीभाव मानकर 'शांत' नामक रस को नवम् रस माना है। अर्थात् आचार्य मम्मट के अनुसार रसों की संख्या नौ है। आचार्य विश्वनाथ ने 'रति' या 'वत्सल' को स्थायीभाव मानकर 'वात्सल्य' नामक 10वें रस का प्रतिपादन किया है। आचार्य रूपगोस्वामी ने 'ईश्वर विषयक रति' को स्थायी भाव मानकर 'भक्ति रस' नामक 11वें रस का प्रतिपादन किया। इस प्रकार हिन्दी काव्य में रसों की कुल संख्या ग्यारह तक पहुँच जाती है। जिसका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है —

(i) शृंगार रस —

जहाँ पर कवि नायक-नायिका के रूप सौन्दर्य एवं प्रेम सम्बन्धी वर्णन को प्रधानता देता है, वहाँ पर शृंगार रस होता है या उसे शृंगार रस कहते हैं। शृंगार रस को रसराज कहा जाता है। इसका स्थायी भाव रति है। उदाहरण स्वरूप बिहारी के इस दोहे को देखा जा सकता है, जो संयोग शृंगार का उत्तम उदाहरण है —

"बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करैं भौंहनि हँसै, दैन कहै नटि जाय॥"

इसी प्रकार वियोग या विप्रलम्भ शृंगार के उदाहरण के रूप में सूरदास के इस पद को देखा जा सकता है——

"निसिदिन बरसत नयन हमारे,
सदा रहति पावस ऋतु हम पै जब ते स्याम सिधारे।"

(ii) वीर रस ——

जब किसी रचना या वाक्य आदि से वीरता या उत्साह जैसे स्थायी भाव की उत्पत्ति होती है, तो उसे वीर कहा जाता है। वीर रस के अन्तर्गत युद्ध एवं कठिन कार्य को करने के लिए मन में उत्साह की भावना उत्पन्न होती है, उसे ही वीर रस कहते हैं, उदाहरण स्वरूप इन काव्य पंक्तियों को देखा जा सकता है——

"बुन्देले हर बोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥"

द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी की निम्न काव्य-पंक्तियाँ——

"वीर तुम बढ़े चलो, धीर तुम बढ़े चलो।
सामने पहाड़ हो कि सिंह की दहाड़ हो।
तुम कभी रुको नहीं, तुम कभी झुको नहीं॥"

(iii) रौद्र रस ——

जब किसी एक पक्ष या व्यक्ति द्वारा दूसरे पक्ष या व्यक्ति का अपमान करने अथवा अपने गुरुजन आदि की निन्दा से मन में जो क्रोध उत्पन्न होता है, उसे रौद्र रस कहते हैं। इसका स्थायी भाव 'क्रोध' होता है। उदाहरण स्वरूप मैथिलीशरण

गुप्त की निम्नलिखित काव्य पंक्तियों को देखा जा सकता है—

"श्रीकृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्षोभ से जलने लगे।
सब शील अपना भूलकर करतल युगल मलने लगे॥
संसार देखे अब हमारे शत्रु रण में मृत पड़े।
करते हुए यह घोषणा वे हो गए उठ कर खड़े॥"

(iv) वीभत्स रस —

घृणित वस्तुओं या चीजों अथवा घृणित व्यक्ति को देखकर या उसके सम्बन्ध में विचार करके या सुनकर मन में जो घृणा उत्पन्न होती है, उसे वीभत्स रस कहते हैं। इसका स्थायी भाव जुगुप्सा है। उदाहरण स्वरूप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की ये काव्य पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"सिर पर बैठ्यौ काग आँख दोउ खात निकारत।
खींचत जीभहिं स्यार अतिहि आनंद उर धारत॥
गीध जाँघि को खोदि-खोदि कै माँस उपारत।
स्वान आंगुरिन काटि-काटि कै खात विदारत॥"

अथवा—"आँखे निकाल उड़जाते, क्षण भर उड़ कर आ जाते।
शव जीभ खींचकर कौवे, चुभला-चभला कर खाते॥
भोजन में श्वान लगे मुरदे थे भू पर लेटे।
खा माँस चाट लेते थे, चटनी सैम बहते-बहते बेटे॥"

(v) अद्भुत रस —

जब व्यक्ति के मन में विचित्र अथवा आश्चर्यजनक वस्तुओं को देखकर जो विस्मय आदि के भाव उत्पन्न होते हैं, उसे अद्भुत रस कहते हैं। इसका स्थायी भाव 'विस्मय' होता है। उदाहरण स्वरूप सेनापति की

ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

"अखिल भुवन चर-अचर सब, हरि मुख में लखि मातु।
चकित भई गद्‌गद वचन, विकसित दृग पुलकातु॥"

या "देख यशोदा शिशु के मुख में, सकल विश्व की माया।
क्षणभर को वह बनी अचेतन, हिल न सकी कोमल काया॥"

(vi) हास्य रस—

वेशभूषा, वाणी आदि की विकृति को देखकर मन में जो प्रसन्नता का भाव उत्पन्न होता है, उससे हास की उत्पत्ति होती है, इसे ही हास्य रस कहा जाता है। इसका स्थायी भाव हास होता है। जैसे काका हाथरसी की यह हास्य रचना—

"तम्बूरा ले मंच पर बैठे प्रेमप्रताप,
साज मिले पन्द्रह मिनट घंटा भर आलाप।
घंटा भर आलाप, राग में मारा गोता,
धीरे-धीरे खिसक चुके थे सारे श्रोता॥"

(vii) भयानक रस—

जब किसी भयानक या बुरे व्यक्ति या वस्तु को देखने या उससे सम्बन्धित वर्णन करने या किसी दुःखद घटना का स्मरण करने से मन में जो व्याकुलता या परेशानी उत्पन्न होती है, उसे भय कहते हैं तथा उस भय के उत्पन्न होने से जिस रस की उत्पत्ति हृदय में होती है, उसे भयानक रस कहते हैं। इसका स्थायी भाव 'भय' होता है। जैसे जयशंकर प्रसाद की यह पंक्तियाँ—

"उधर गरजती सिन्धु लहरियाँ कुटिल काल के जालों-सी।
चली आ रहीं फेन उगलती फन फैलाये व्यालों-सी॥"

अथवा— "अखिल यौवन के रंग उभार, हड्डियों के हिलाते कंकाल

कचों के चिकने काले, व्याल, केंचुली काँस सिबार ॥"

(viii) करुण रस ——

किसी अपने का विभोग या विनाश, द्रव्यनाश एवं प्रेमी से सदैव के लिए बिछुड़ जाने या दूर चले जाने से जो दुःख या वेदना उत्पन्न होती है, उसे करुण रस कहते हैं। आचार्य भरतमुनि ने करुण रस की उत्पत्ति रौद्र रस से मानी है। उनके अनुसार, "सैद्रात्च्य करुणो रसः।" उदाहरण स्वरूप तुलसीदास की रामचरितमानस की निम्न पंक्तियों को देखा जा सकता है—

"सोक बिकल सब रोवहिं रानी।
रूपु सीलु बलु तेजु बखानी ॥
करहिं विलाप अनेक प्रकारा।
परिहिं भूमि तल बारहिं बारा ॥"

(ix) शांत रस ——

मोक्ष और अध्यात्म की भावना से जिस रस की उत्पत्ति होती है, उसे शांत रस कहते हैं। इस रस में तत्व ज्ञान की प्राप्ति अथवा संसार से वैराग्य होने पर या परमात्मा के वास्तविक रूप का ज्ञान होने पर मन को जो शांति मिलती है, वह शांत रस है। जब हृदय में शांत रस की उत्पत्ति होती है, तब न दुःख होता है, न द्वेष होता है। इसका स्थायी भाव 'निर्वेद' (उदासीनता) होता है। जैसे कबीरदास का यह दोहा—

"जब मैं था तब हरि नहिं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
सब अँधियारा मिट गया, जब दीपक देख्या माहिं।

अथवा— "मन रे तन कागद का पुतला।

लागै बूँद बिनसि जाय छिन में, गरब करै क्या इतना॥

(X) वात्सल्य रस —

माता का पुत्र के प्रति प्रेम, बड़ों का बच्चों के प्रति प्रेम, गुरुओं का शिष्य के प्रति प्रेम, बड़े भाई का छोटे भाई या बहन के प्रति प्रेम आदि का भाव स्नेह कहलाता है तथा इसी स्नेह का भाव परिपुष्ट होकर वात्सल्य रस कहलाता है। इसका स्थायी भाव 'वात्सल्यता' (अनुराग) होता है। जैसे महाकवि सूरदास का यह पद —

"किलकत कान्ह घुटरुवन आवत।
मनिमय कनक नंद के आँगन बिम्ब पकरिबैं धावत॥"

या "बाल दसा सुख निरखि जसोदा, पुनि पुनि नन्द बुलवाति।
अँचरा-तर लै ढाकी सूर, प्रभु कौ दूध पियावति॥"

(XI) भक्ति रस —

जब ईश्वर के प्रति हृदय में अनुराग या अनुरक्ति उत्पन्न होता है, तब इस भाव को भक्ति रस कहा जाता है अर्थात् इस रस के माध्यम से ईश्वर के प्रति प्रेम का वर्णन किया जाता है। इसका स्थायी भाव 'भगवत् विषयक रति' होता है। यथा मीराबाई का यह पद —

"अँसुवन जल सिंची-सिंची प्रेम-बेलि बोई।
मीरा की लगन लागी, होनी हो सो होई॥"

या "राम जपु, राम जपु, रामजपु बावरे।
घोर भव नीर-निधि, नाम निज नाव रे॥" (कबीर)